National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(65): 298-300
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ. पवनकुमार मिश्र
असिस्टेंट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग, महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक-विश्वविद्यालय, उज्जैन, मध्यप्रदेश

Correspondence:
डॉ. पवनकुमार मिश्र
असिस्टेंट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग, महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक-विश्वविद्यालय, उज्जैन, मध्यप्रदेश

मुहूर्त शास्त्र : एक शास्त्रीय विवेचन

डॉ. पवनकुमार मिश्र

सारांश
भारतीय ज्योतिषशास्त्र में मुहूर्त शास्त्र का विशेष स्थान है। यह ज्योतिष की वह शाखा है जिसके माध्यम से विभिन्न लौकिक एवं वैदिक कार्यों के लिए शुभ समय का निर्धारण किया जाता है। भारतीय मनीषियों ने यह स्वीकार किया कि प्रत्येक कार्य की सफलता केवल कर्म पर ही नहीं, अपितु उचित काल-चयन पर भी निर्भर करती है। मुहूर्त शास्त्र में तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, लग्न तथा ग्रहस्थिति के आधार पर कार्यारम्भ हेतु अनुकूल समय निर्धारित किया जाता है। प्रस्तुत लेख में मुहूर्त शास्त्र की संकल्पना, शास्त्रीय आधार, प्रमुख सिद्धांत तथा सामाजिक उपयोगिता का शास्त्रीय विवेचन किया गया है।

मुख्य शब्द : मुहूर्त, ज्योतिषशास्त्र, पंचांग, लग्न, शुभकाल, वैदिक परम्परा

1. प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति में काल (समय) को सृष्टि और कर्म का मूल आधार माना गया है। वैदिक साहित्य से लेकर ज्योतिष के परवर्ती ग्रंथों तक समय की शुद्धता और उसके चयन पर विशेष बल दिया गया है। ज्योतिषशास्त्र के अन्तर्गत विकसित मुहूर्त शास्त्र इसी काल-विज्ञान की व्यावहारिक शाखा है। इसका उद्देश्य यह निर्धारित करना है कि किसी विशिष्ट कार्य को किस समय प्रारम्भ करने से श्रेष्ठ फल प्राप्त होगा?

ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में काल एवं नक्षत्र-विचार के बीज रूप मिलते हैं, जो आगे चलकर ज्योतिषीय मुहूर्त-विज्ञान में विकसित हुए।

2. मुहूर्त की व्युत्पत्ति एवं स्वरूप

संस्कृत में "मुहूर्त" शब्द समय के एक विशिष्ट खण्ड का बोधक है। एक अहोरात्र (24 घंटे) में 30 मुहूर्त माने गए हैं। इस प्रकार एक मुहूर्त लगभग 48 मिनट का होता है।

अमरकोश[1] में द्वादशक्षणपरिमितकाल और राजनिर्घण्ट[2] में घटिकाद्वय को मुहूर्त कहा गया है। मुहूर्त-चिन्तामणि[3] में प्रत्येक अहोरात्र में ३० मुहूर्त कहा गया है किन्तु १५ दिन में और १५ रात्रि में कहा गया है जिसकी पुष्टि नारदवचन[4] से भी होती है। चूंकि मुहूर्तचिन्तामणि मुहूर्त का ही ग्रंथ है और यह वर्तमान समय में सर्वाधिक प्रमाणित ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित भी है अतः यहां पर जो मुहूर्त शब्द का उल्लेख है उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि जहां पर कालमान आदि की इकाई के रूप में मुहूर्त का बोध करना है वहां पर काष्ठा आदि मानक के अनुसार दो घाटी का मुहूर्त मान लेना तो उचित है किंतु जहां मुहूर्त विचार के संदर्भ में हो वहां पर मुहूर्त का वर्गीकरण दिनमान और रात्रिमान के १५वें भाग के अनुसार करना ही उचित प्रतीत होता है। लेकिन जिस आशय से शुभाऽशुभ विचारपरक ग्रन्थों का नामकरण मुहूर्तशास्त्र के रूप में किया जाता है उससे यह स्पष्ट होता है कि यह "मुहूर्त" शब्द समस्त शुभाऽशुभ अवयवों का जो स्वरूप है उन सभी पर केंद्रित शास्त्र को मुहूर्तशास्त्र कहा जाता है।

अर्थात जब किसी संस्कार उत्सव यज्ञ अनुष्ठान आदि के निमित्त मुहूर्त अवलोकन की बात की जाती है तब वहां कालखंड की इकाई के रूप में प्रतिपादित मुहूर्त का ही मात्र विचार नहीं किया जाता है अपितु वहां समस्त सुभाऽशुभ फल की दृष्टि से जिन अवयवों का वर्णन किया गया है उनका सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण करने की आवश्यकता होती है अतः ज्योतिषीय अर्थ में मुहूर्त केवल समय-खंड नहीं, बल्कि ऐसा काल है जिसमें ग्रह, नक्षत्र एवं पंचांगीय तत्व किसी कार्य के लिए अनुकूल हों।

3. मुहूर्त शास्त्र का शास्त्रीय आधार

मुहूर्त शास्त्र का आधार भारतीय ज्योतिष के होरा एवं संहिता स्कन्ध में निहित है। प्राचीन ग्रंथों में मुहूर्त का व्यवस्थित विवेचन मिलता है।

(क) वेदाङ्ग ज्योतिष

महर्षि लगध द्वारा प्रणीत वेदाङ्ग ज्योतिष में कालगणना का महत्व स्पष्ट किया गया है - "वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ता: कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।"[5]

अर्थात वेदों में वर्णित यज्ञादि कर्म कालानुसार सम्पन्न किए जाने चाहिए।यह मुहूर्त सिद्धान्त का मूल वैदिक आधार है।

(ख) बृहत्संहिता

आचार्य वराहमिहिर ने विभिन्न कार्यों के लिए नक्षत्र, तिथि और ग्रहस्थिति के अनुसार शुभाशुभ काल का विवेचन किया है। बृहत्संहिता मुहूर्त निर्णय का प्रमुख ग्रंथ है।

(ग) मुहूर्तचिन्तामणि

आचार्य रामदैवज्ञ कृत यह ग्रंथ मुहूर्त शास्त्र का अत्यंत प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। इसमें विवाह, गृहप्रवेश, यात्रा, संस्कार आदि के मुहूर्तों का विस्तृत निरूपण है।

4. मुहूर्त निर्णय के प्रमुख तत्व

मुहूर्त शास्त्र में पंचांग के पाँच अंगों का विचार किया जाता है—

1. तिथि - अमावस्या तिथि के दिन सूर्य-चन्द्र दोनों एक राशि पर आ जाते हैं। उसके बाद सूर्य एवं चन्द्रमा आकाश में अपने-अपने मार्ग पर घूमते हुए जो दूरी उत्पन्न करते हैं, उसी को तिथि कहा गया है। १२-१२अंश अन्तर की एक-एक तिथि होती है। ३६०अंश पूरा होने पर पुनः सूर्य-चन्द्र एक राशि पर आ जाते हैं, तब एक चान्द्रमास होता है। सूर्य-चन्द्र का १२अंश अन्तर जितने समय में पूरा होता है, उसको तिथिभोगकाल[6] कहते हैं। तिथि का अन्तर जिस समय से प्रारम्भ होता है, वह पचाङ्ग में अंकित रहता है। इसका ज्ञान करने की विधि यह है- राश्यादि चन्द्रमा में राश्यादि सूर्य को घटाने से जो राश्यादि शेष बचे उसका अंशादि बनाकर उसमें १२ का भाग देने पर प्राप्त लब्धि गत तिथियों की संख्या हो जाती है, शेष वर्तमान तिथि का भुक्तांश होता है। इस भुक्तांश पर से घटी-पल बनाकर पंचांग में लिख देते हैं।जब १, २, ३, ४ आदि तिथियों में चन्द्रमा की कलाएँ बढ़ती रहती हैं, उसको शुक्लपक्ष और जिस समय चन्द्रमा की कलाएँ घटने लगती हैं, उसे कृष्णपक्ष कहा जाता है। इसलिए चान्द्रमास में दो पक्ष कहे गये हैं। जब चन्द्रमा की कलाएँ पूर्णता को प्राप्त हो जाती हैं तो उसे पूर्णिमा एवं घटते-घटते जब कला हीन हो जाती है तो वह अमावस्या कही जाती है।

2. वार-जब किसी वस्तु का निरीक्षण होता है, तब उत्कृष्ट वस्तु पर ही दृष्टि पड़ती है। उसके अनन्तर तत्सम या उससे न्यून पर दृष्टि पड़ती है। इस नियम के अनुसार हमारे ऋषि-मुनियों की दृष्टि सर्वप्रथम सूर्य पर पड़ी, इसलिये पहला वार सूर्य का निश्चित हुआ। उसके बाद चन्द्रमा पर दृष्टि पड़ी, इसलिये दूसरा वार चन्द्रमा का कहा गया। सूर्यकक्षा से चन्द्रकक्षा का क्रम ४ है। इसलिए चौथे -चौथे कक्षा क्रम से वार निश्चित किये गये। इस दृष्टि से चन्द्रमा से चौथी मंगल, मंगल से चौथी बुध, बुध से चौथी गुरु, गुरु से चौथी शुक्र, शुक्र से चौथी शनि की कक्षा पड़ती है। इस प्रकार ऋषियों ने वार-क्रम निश्चित कर विश्व का महान् उपकार किया है। क्योंकि यह क्रम भूकेन्द्रिक नियम से ही सिद्ध होता है।

और भूकेन्द्रिक कक्षा क्रम भारतीय परम्परा में वर्णित है

3. नक्षत्र – नक्षत्र विचार से तो सभी ग्रह किसी न किसी नक्षत्र पर होते हैं इससे एक ही दिन में कई नक्षत्र होते हैं किंतु जो मुहूर्त विचार में नक्षत्र पंचांग के पांच अंगों में ग्राह्य है वह चंद्र नक्षत्र होता है अर्थात चंद्रमा जिस नक्षत्र पर होता है वह ही दैनिक नक्षत्र माना जाता है। अपनी कक्षा में चंद्रमा का १३ अंश २० कला चलने से अश्विनी यदि २७ नक्षत्र[7]पूर्ण होते हैं।

4. योग

सूर्य और चन्द्रमा की संयुक्त गणना से योग निर्मित होते हैं। अर्थात सूर्य और चंद्रमा संयुक्त रूप से जब १३ अंश २० कला चलते हैं तो विष्कुम्भ आदि २७ योग[8] पूर्ण होते हैं।

5. करण

तिथि के आधे भाग को करण कहा जाता है। करण कार्यसिद्धि का सहायक माना गया है।

ध्रुवाणि शकुनिर्नागं तृतीयं तु चतुष्पदम् ।
किंस्तुघ्नं तु चतुर्दश्याः कृष्णायाश्चापरार्धतः ॥
बवादीनि ततः सप्त चराख्यकरणानि च ।
मासेऽष्टकृत्व एकैकं करणानां प्रवर्तते ॥
तिथ्यर्धभोगं सर्वेषां करणानां प्रकल्पयेत् ।
एषा स्फुटगतिः प्रोक्ता सूर्यादीनां खचारिणाम् ॥[9]

इन पाँचों के अतिरिक्त लग्न एवं ग्रहबल का भी विचार आवश्यक है।

5. लग्न एवं ग्रहस्थिति का महत्व

मुहूर्त में लग्न का विशेष महत्व है क्योंकि कार्यारम्भ के समय उदित राशि ही उस कार्य का जन्मकाल सदृश मानी जाती है। शुभ ग्रहों से युक्त तथा पापग्रहों से रहित एवं अभीष्ट कार्य के लिए निर्धारित लग्न को श्रेष्ठ माना गया है।

6. मुहूर्त शास्त्र की सामाजिक उपयोगिता

सनातन परम्परा में आधान से अन्त्येष्टि तक के संस्कार, दैनिकजीवनोपयोगी दन्तधावन, मलापकर्षण, तैलाभ्यंग , वस्त्र-रत्न धारण, सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री उपभोग,कृषि कार्य, अन्न संरक्षण, नवीन अन्न सेवन, पशुपालनव्यवहार, दिव्यादि परीक्षा, औषधि सेवन, देव-पितृ आराधना, अभीष्ट निमित्तक विशिष्ट यागानुष्ठानादि,वास्तु, यात्रा, राज्याभिषेक, व्यापार, कार्यों हेतु मुहूर्त का विचार शास्त्रों में किया गया है। जिसमें से आज भी समाज में नामकरण-अन्नप्राशन-चूडाकरण -उपनयन- विवाहादि संस्कार, भूमिशोधन-शिलान्यास-गृहप्रवेश, व्यवसायारम्भ, यात्रा, देवप्रतिष्ठा मुहूर्त आज भी व्यवहार में दृष्टिगोचर होता है।

यह व्यक्ति को केवल धार्मिक आश्वासन ही नहीं देता, बल्कि सामाजिक एवं मानसिक स्थिरता भी प्रदान करता है।

7. निष्कर्ष

मुहूर्त शास्त्र भारतीय ज्योतिष का एक अत्यंत व्यावहारिक और दार्शनिक पक्ष है। यह केवल शुभ समय चयन की प्रणाली नहीं, बल्कि काल, प्रकृति और मानव कर्म के बीच सामंजस्य स्थापित करने वाला शास्त्र है। वैदिक साहित्य, वेदाङ्ग ज्योतिष, बृहत्संहिता तथा मुहूर्तचिन्तामणि जैसे ग्रंथ इसकी प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं। आधुनिक शैक्षणिक अध्ययन में भी मुहूर्त शास्त्र भारतीय ज्ञानपरम्परा के महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकार किया जाता है।

पादटिप्पण्यः-

[1]अमरकोश 1/1/123

[2]राजनिर्घण्ट

[3]मुहूर्त चिंतामणि, विवाहप्रकरण, श्लोक संख्या 52-53

[4]"दिवामुहूर्त्ता रुद्राहिमित्राः पितृवसूदकम्।
विश्वे विधातृब्रह्मेन्द्रा इन्द्राग्न्यसुरतोयपाः।।
अर्यमा भगसंज्ञश्च विज्ञेया दश पञ्च च।'
'ईशाजपादहिर्बुध्न्यपूषाश्वियमवह्नयः
धातृचन्द्रादितीज्याख्य विष्णवर्कत्वष्ट्वायवः।।' मुहूर्तचिन्तामणि, पियूषधारा टीका, विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा सुभारती प्रकाशन वाराणसी सन् 2005 पृष्ठ संख्या 383

[5]याजुषज्योतिष श्लोक संख्या 03

[6]सूर्य सिद्धांत स्पष्ट अधिकार श्लोक संख्या 66

[7]सूर्य सिद्धांत स्पष्ट अधिकार श्लोक संख्या 64

[8]सूर्य सिद्धांत स्पष्ट अधिकार श्लोक संख्या 65

[9]सूर्य सिद्धांत स्पष्ट अधिकार श्लोक संख्या 67 - 69

संदर्भ सूची

बृहत्संहिता, पं. अच्युतानंद झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी सन् 2014।

मुहूर्तचिन्तामणि, विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी सन् 2005।

अमरकोश, मन्नालाल अभिमन्यू , मास्टर खेलाड़ी लाल प्रकाशन वाराणसी सन् 1937।

फलदीपिका टीकाकार पं. गोपेश ओझा मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन वाराणसी, दिल्ली, पटना सन् 1946।

राजनिघण्टु , डॉ. इन्द्रदेव त्रिपाठी, कृष्णदास अकादमी प्रकाशन वाराणसी सन् 1982

वेदाङ्गज्योतिष के.डी. शर्मा इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी दिल्ली सन् 1985।